

# उत्तराखण्ड एग्जाम नोट्स

9411385738, 7579431731

## उत्तराखण्ड : जनजातियों का इतिहास

### भोटिया जनजाति

भोटिया भारत का वह जीवट मानव समूह है जिसने हिमालय के गोद में भीषणतम भौगोलिक परिस्थितियों में भी न केवल अपना अस्तित्व बनाये रखा, बल्कि अपनी गौरवमय अतीत की सांस्कृतिक धरोहर को भी संरक्षित रखा। इनकी इसी जीवटता का प्रतिफल है ये आज हर लिहाज से समृद्ध है। वास्तव में ये **रं, शौका, मारछा या रोंग्या और जाड़** है। किसी एक जनजाति में शायद ही इतनी सांस्कृतिक विविधता हो। उत्तराखण्ड के अलावा भोटिया हिमाचल से लेकर सिक्किम, अरुणांचल प्रदेश तक फैले हुए हैं। ये हिन्दू और बौद्ध तो हैं, मगर इनकी बहुत न्यून संख्या उत्तराखण्ड से बाहर इस्लाम को भी मानती है।

अपने विराट स्वरूप और सर्वाधिक ऊंचाई जैसी विशेषताओं के कारण अगर हिमालय को भारत वर्ष का ताज कहा जाता है तो इसके मूल निवासी भोटिया समुदाय को उसकी जीवटता, उद्यमशीलता, प्रगतिशीलता तथा विशिष्ट संस्कृति को देखते हुए भारत के आदिम जाति समूह का सरताज अवश्य ही कहा जा सकता है। मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति इसी क्षेत्र की नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत की जनजातियों में सर्वाधिक विकसित है तथा खुशहाली और समृद्धि गैर जनजातीय लोगों के लिए भी एक अनुकरणीय उदाहरण है। इस जनजाति का यह विकास किसी देवी वरदान या खास प्राकृतिक सम्पदा के कारण नहीं, बल्कि उनकी हिम्मत, कठिन

परिश्रम और लगन का ही परिणाम है। उन्होंने भीषणतम भौगोलिक परिस्थितियों और प्रतिकूल जलवायु में खुशी से जीने की कला भी सीखी और इन कठिनतम परिस्थितियों ने उनके अन्दर के पौरुष को ललकार कर उन्हें व्यापार के जरिये अपने जीवन को खुशहाल बनाने के लिए प्रेरित भी किया। भोटिया जनजाति के लोगों की कुशाग्र बुद्धि, कड़ी मेहनत और जन्तजात विनम्रता का ही नतीजा है कि आज वे हर क्षेत्र में अपना विशेष स्थान रखते हैं तथा अपने अलावा देश और समाज की सेवा में जुटे हुए हैं। उत्तराखण्ड राज्य के गठन के कुछ सालों के अन्तराल में ही जो मानव समूह प्रदेश को 2 मुख्य सचिव, 2 मुख्य सूचना आयुक्त, दर्जनों आई० ए० एस०, आई० पी० एस०, आई० एफ० एस०, पी० सी० एस० और पी० पी० एस०, सैकड़ों डॉक्टर और उतने ही इंजीनियर तथा सहस्त्रों की संख्या में अन्य नौकरशाह देने के साथ ही प्रदेश के उद्योग और व्यापार में भी अहम भूमिका अदा करता हो। वह दूसरे समुदायों के लिए स्वतः ही प्रेरणा स्रोत बन जाती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इस मानव समूह में किसी प्राचीन या अर्वाचीन श्रेष्ठ मानव नस्ल का अंश होने का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

हालांकि भोटिया जनजाति के लोग आज सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में छाये हुए हैं, लेकिन उनकी परम्परागत बसागत हिमालय क्षेत्र में लगभग 12,800 वर्ग कि०मी० क्षेत्र में मानी जाती है। मानवशास्त्रियों के अनुसार ये लोग अन्य जनजातियों की तुलना में नाक-नक्श एवं शारीरिक बनावट में कुछ “भिन्न मंगोलियन” बनावट के हैं। भाषाई तौर पर ये “तिब्बतियों” के अधिक करीब हैं। इस सम्पूर्ण क्षेत्र की ऊंचाई 2100 से 3500 मीटर है।

घाटियों के हिसाब से विभिन्न क्षेत्रों में उन्हें भिन्न नामों से जाना जाता है। दारमा, ब्यास और चौंदास घाटियों के निवासियों को –रं (रड.) और शौका नाम से जाना जाता है, जबकि चमोली में उन्हें मारछा और तोलछा कहा जाता है। मुनस्यारी की जोहार घाटी के लोगों को –जोहारी या शौका के नाम से जाना जाता है। जाडुंग तथा निलंग घाटियों के भोटियाओं को –जाड़ कहा जाता है।

जाड़ बौद्ध हैं तथा शौका पर हिन्दू एवं बौद्ध दोनों का ही असर है। गढ़वाली, कुमाऊँनियों की तरह भोटिया समुदाय में भी राजपूतों की जैसी उपजातियां हैं। गढ़वाल के मारछा और तोलछा गंगाड़ (निचली घाटियों) के ठाकुरों जैसे रावत, राणा, कुंवर और चौहान जैसी उपजातियां अपना चुके हैं। चमोली में **मारछा-तोलछा** को-**रोगपा** कहते हैं। भोटियों के तिब्बती मूल के होने या उनके बौद्ध धर्म के करीब होने के तर्कों के बारे में यहीं कहा जा सकता है कि यह समूह स्वयं को पहाड़ के ठाकुरों या खस से ज्यादा करीब पाता है और अब इनके पहाड़ी ठाकुरों से विवाह सम्बन्ध भी होने लगे हैं। **वाल्टन** के अनुसार, "गढ़वाल के गजेटियर-1910" में लिखा है कि **भोटिया स्वयं को हिन्दू राजपूत मानते हैं**। मगर कई पीढ़ियों तक तिब्बत में रहने और वहां की स्त्रियों से विवाह करने से उनमें तिब्बतियों के नृवंशीय गुण आ गये हैं। भोटिया जनजाति में दो वर्ण, **सवर्ण** और **अवर्ण** मौजूद हैं। भोटिया अनुसूचित जाति के लोगों को आरक्षण का दोहरा लाभ मिल जाता है, जबकि जौनसार भाबर और रंवाई जौनपुर की कोल्टा अनुसूचित जाति आरक्षण से वंचित है। हिन्दू धर्म के प्रति इनकी आस्था और जुड़ाव के लिए यह प्रमाण काफी है कि बैकुण्ठ धाम के नाम से भी पुकारे जाने वाले हिन्दुओं के सर्वोच्च तीर्थ **बद्रीनाथ** के कपाट जब बंद होते हैं तो **भगवान विष्णु** की पद्मासन वाली **पाषाण प्रतिमा** को 6 माह के लिए **माणा गांव** की कुंवारी **मारछा कन्याओं** द्वारा बुनी गयी **कम्बल पर लपेट कर गर्भग्रह में रखा जाता है**। यह घृत कम्बल कपाट खुलते समय अर्वाचीनकाल की इस शालिग्राम **पाषाण प्रतिमा** से हटाया जाता है, जिसे प्रसाद के रूप में भक्तों में वितरित कर दिया जाता है। **माणा के भोटिया समुदाय का घण्टाकर्ण ईष्ट देवता ही हिन्दू धर्मावलम्बियों द्वारा बद्रीनाथ का अंगरक्षक माना जाता है**। यह बात दीगर है कि कुछ विद्वानों के अनुसार स्वयं बद्रीनाथ मंदिर प्राचीन काल का एक बौद्धमठ ही है, जिससे तप्त कुण्ड से आद्यगुरु शंकराचार्य ने मूर्तियां निकालकर पुनः उनकी मन्दिर के अंदर प्रतिष्ठा की थी। आद्यगुरु ने जब भारत के चारों कोनों पर सनातन धर्म की रक्षा के लिए चार पीठों की स्थापना की थी तो उसमें एक जोशीमठ भी थी। उन्होंने

न केवल बद्रीनाथ मन्दिर को बौद्ध मठ से विष्णु का मंदिर बनाया, बल्कि वह बौद्ध बने लोगों को पुनः हिन्दू धर्म में वापस लाये थे।

## ● भोटिया जातीय समूह:

भोटिया वास्तव में कोई जाति नहीं है। ये लोग स्वयं भी भोटिया, जातीय सम्बोधन को पसंद नहीं करते हैं। डॉ० आर० एस० टोलिया (ग्रेट ट्राइबल डाइवर्सिटी ऑफ उत्तराखण्ड) के अनुसार अंग्रेज प्रशासकों ने इनकी बसागत और तिब्बत से सम्बन्धों के चलते इन्हें गलती से भोटिया पुकारना शुरू कर दिया जबकि इन्हें मारछा, तोलछा, जौहारी, शौका, दारमी, चौंदासी और व्यासी के नाम से सम्बोधित किया जाना चाहिए था। हिमालय गजेटियर (1882) में एटकिन्सन ने कहा कि भोटिया शब्द की उत्पत्ति "भोट" शब्द से हुई है जो कि "बोड" शब्द का अपभ्रंश है। इसका अर्थ तिब्बत से लगाया जाता था और इसी भोट शब्द ने भोटिया नाम को जन्म दिया, जिसे कालान्तर में तिब्बत तथा भारत के बीच सीमान्त क्षेत्र में रहने वाले मानव समूहों के लिए प्रयुक्त किया गया। एटकिन्सन ने इन्हें खस मानने से इन्कार करने के साथ ही इनकी भाषा के आधार पर इन्हें तिब्बती मूल माना है। लेकिन भोटिया विद्वानों का कहना है कि एटकिन्सन प्रशासक तो था मगर मानव विज्ञानी नहीं था। "भोटियाज ऑफ इण्डो तिब्बत बोर्डर उत्तराखण्ड" में बी० बी० चटर्जी ने लिखा है कि भोटिया शब्द का प्रयोग भारत-तिब्बत सीमा में निवास करने वाले अनेक नृजातीय समूह के लिए किया जाता है। जिनकी की कुछ समान, लेकिन अन्य मानव जातियों से भिन्न शारीरिक विशेषताएं होती हैं। देखा जाए जो भोटिया भारत-तिब्बत सीमा पर सीमान्त प्रहरी की तरह बसे हुए हैं। अगर भारतीय के बजाय उन्हें तिब्बती कहा जाए तो उनकी भावनाओं का आहत होना स्वाभाविक ही है। सम्भवतः तिब्बत से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने तथा वहां के निवासियों के साथ खान-पान का सम्बन्ध हो जाने से ये लोग भोटिया कहलाने लगे थे। तिब्बतियों के साथ "जानकोषी" और "पानकोषी" (खान-पान के रिश्ते) सम्मिलित होना सुदृढ़ मैत्री का यथार्थ

प्रमाण माना जाता था। शिवराज सिंह रावत निःसंग ने प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर उत्तरकाशी से लेकर पिथौरागढ़ के भोटिया समुदाय की मूल जाति रंग और तंगण बताया है। निःसंग ने अपने लेख में कहा है कि पशुचारण करते समय इस वर्ग ने कैलाश—मानसरोवर में "रांगा" धातु की खोज की थी, जो कि धातु के टुकड़ों को जोड़ने का काम करती है। इस धातु का पूरे एशिया में व्यापार होता था। इसी तरह प्रागैतिहासिक काल में ही इस जाति ने कैलाश क्षेत्र में "सुहागा" की खोज भी की थी। सुहागा एक ऐसा क्षारयुक्त द्रव्य है जो कि सोना, चांदी, कांसा और लोहा आदि धातुओं के खण्डों को जोड़ने के काम आता है। संस्कृत में इस धातु को टंकण कहा जाता है, इसलिए इस जाति को "तंगण" भी कहा जाता है। मौर्य, मौर्य, गुप्त तथा कत्यूरी काल में इनके व्यापार को भारी प्रोत्साहन मिला।

निःसंग अपने शोध लेख में कहते हैं कि इस व्यापारिक समुदाय के सम्बन्ध अतीत में वैदिक परम्पराओं से जुड़े हुए थे। कालान्तर में इस जाति ने विष्णु गंगा क्षेत्र में माणा, धवल गंगा क्षेत्र में नीति—गमसाली, जान्हवी क्षेत्र में जौहार, व्यास, दारमा, ताकलाकोट, मुनस्यारी, धारचूला और व्यास — चौंदास जैसी उपयोगी मार्गों के सिराभाग में अपना निवास स्थान चुना। माणा गांव का नामकरण किरातवंशी यक्ष मणिभद्र के नाम से हुआ। पौराणिक काल में माणा दर्रे को क्रोचद्वार और नीति दर्रा को सौका द्वार कहा जाता था। उत्तराखण्ड की विभिन्न घाटियों में सदियों से निवास कर रही भोटिया जनजाति को विभिन्न नामों से जाना जाता है। धारचूला के "रं", मुनस्यारी के "शौका", माण के "मारछा", नीति घाटी के "तोलछा" तथा उत्तरकाशी के "जाड़ भोटिया" का रहन—सहन, बोली, भाषा तथा वेश — भूषा भिन्न है। पूर्व में इनमें से एक समूह दूसरे से वैवाहिक सम्बन्ध नहीं रखते थे। गढ़वाल में मारछा जनजाति के मूल गांव माणा, गमसाली, नीति और बम्पा है, जबकि तोलछा लोगों के मूल गांव कोसा, कैलाशपुर, फरकिया, मलारी, जेलम, फाक्ती, सुराईठोठा और सुबाई आदि है।

सुबाई, मल्लगांव और सुक्की जैसे कुछ गांवों में दोनों जातियों की मिश्रित आबादी निवास करती है। तोलछा स्वयं को ऊंची जाति का मानते हैं। उत्तरकाशी जिले की भटवाड़ी तहसील के भोटिया जाड़ निलंग तथा जाडुंग घाटियों के मूल निवासी है। इन सभी जातीय समूहों में काफी सांस्कृतिक भिन्नताएं हैं। जैसे मारछा, तोलछा स्वयं को क्षत्रियों के करीब मानते हैं, तो जाड़ तिब्बतियों की तरह बौद्ध हैं, परन्तु इनका मूल एक ही माना जाता है। डी० पी० सकलानी के अनुसार गढ़वाल के भोटिया स्वयं को भगवान राम का वंशज मानते हैं। वे केवल क्षत्रियों से अपना सम्बन्ध कायम रखते हैं। वाल्टन के अनुसार (1910) कहा है कि, "भोटिया किसी भी तरह से मौजूदा तिब्बतियों के समरूप नहीं है। हालांकि उनके गुण शक तातार जाति से मिलते हैं।

- **भाषा:**

भोटिया वास्तव में आजीविका के लिए एक घुमन्तु और व्यापारिक मानव समूह रहा है। भारत और तिब्बत के बीच में रहने तथा दोनों भू-भागों में व्यापार करने के लिए उन्हें एक ऐसी विलक्षण भाषा की जरूरत पड़ी जो कि दुनिया के अन्य क्षेत्रों में न बोली जाती हो और ना ही दूसरा व्यापारिक वर्ग उसे समझता हो **इसीलिए इनकी बोली को सांकेतिक भाषा भी कहा गया है।** भोटिया और तिब्बतियों के बीच सदियों से चले आ रहे व्यापार के बारे में कहा जाता है कि भाषा की भिन्नता के कारण इनका व्यापार आपस में इशारों से होता था। मसलन विक्रेता अपने माल को दोनों हाथों से ढक लेता था और खरीददार से तब तक पैसे लेता रहता था जब तक उसे वांछित दाम न मिल सके। **इस व्यापारिक वर्ग को, एशियाई स्तर पर व्यापार के लिए इस गूढ़ भाषा की नितान्त आवश्यकता थी। ताकि व्यापारी वर्ग दूसरे व्यापारी वर्ग की गुप्त भाषा को न समझ सके। छठी एवं सातवीं व्यापारी वर्ग की गुप्त भाषा को न समझ सके। छठीं एवं सातवीं शताब्दी तक तिब्बत ने व्यापारिक उन्नति कर ली थी। किन्तु उसके पश्चात् भी हुणदेशी लुटेरों को आतंक जारी रहा। इससे बचने के लिए भी इस**

व्यापारिक वर्ग को एक अनूठी भाषा की जरूरत पड़ी, जिसे चमोली में भोटिया भाषा या रोंग्पा भाषा कहते हैं। भोटिया जनजाति के लोगों के रहन-सहन और बोली भाषाओं में काफी अन्तर है। धारचूला क्षेत्र के "रं" भोटिया और मुनस्यारी के "शौका" भोटियों में अन्तर है। (बोली और भिन्न पहनावा), नीति-माणा घाटियों के रोंग्पा लोगों की तोलछा बोली गढ़वाली से मिलती-जुलती है, जबकि मारछा बोली तोलछी से भिन्न होने के साथ ही आम आदमी की समझ से परे है। गढ़वाल के तीनों भोटिया भाषा में संस्कृत, तिब्बती, चीनी, बर्मी, जावा, सुमात्रा एवं इण्डोनेशिया आदि भाषाओं के शब्दों का आना स्वाभाविक था। इस भाषा में कई गढ़वाली शब्द भी विलीन हो गये।

### ● आजीविका:

भोटिया अन्य हिमालयी जनजातियों की तरह खेती या वनों पर आधारित कभी नहीं रही। उनकी आजीविका का मुख्य साधन व्यापार रहा है।

सन् 1962 से पहले व्यास घाटी के व्यापारी लिपुलेख दर्रे से तकलाकोट, दारमा घाटी के व्यापारी न्यू धूरा से छाकरा, जोहार के ऊंटा धूरा होते हुए ज्ञानिमा, नीति वाले बाड़ाहोती से दाबा, माण के व्यापारी थोलिंक और निलंग के व्यापारी चपरांग आदि तिब्बती मण्डियों में जा कर व्यापार करते थे। सन् 1959 में दलाई लामा के स्वनिर्वासन के बाद चीन से सम्बन्ध बिगड़ते जाने से व्यापार हिचकोले खाने लगा और 1962 में चीनी आक्रमण के बाद तो व्यापार स्थायी रूप से ठप्प हो गया।

यह एक प्रकार का वस्तु विनिमय था। उस समय "नमक और सुहागा" तिब्बत का मुख्य उत्पाद था। इनका तिब्बत से कई बहुमूल्य वस्तुओं का व्यापार होता था। इनमें भेड़-बकरी, भोटिया घोड़े, भारद्वाज घोड़े, हुण्डेरे, च्यालपू, चंवर पूंछ, तिब्बती ऊन (पसमीना), तिब्बती कालीन, चमड़ा रांगा, तिब्बती नमक, मूंगा, हींग, लाल जड़ी और वनककड़ी आदि जड़ी बूटियां शामिल थे। इनके सीमावर्ती गांव हर व्यापार के डिपो थे।

भोटिया व्यापारियों ने तिब्बत से ही ऊनी कारोबार करना सीखा था। ऊनी वस्त्रों में थुलमा, गदमा, दन्न, चौपथ्य, पट्टू, लावा, आंगड़ा, कालीन, पंखी एवं शटन आदि तथा चांद या रांछ पर ऊनी बुनना भी उन्होंने तिब्बत से ही सीखा था। इतिहास विद् वाधायन का कहना था कि तिब्बत से इनका कई बहुमूल्य वस्तुओं, धातुओं तथा वनोषधियों का व्यापार होता था। इनका व्यापारिक क्षेत्र कोलकाता, मद्रास, जावा, सुमात्रा, सिंगापुर, चम्पादेश, दक्षिणी समुद्र तथा सात समुद्र पार तक था।

तिब्बत में रामुरा, ल्हासा और ढाब्बा जैसे स्थान क्रॉच द्वार (माणा दर्रा) और शौका द्वार (नीति दर्रा) के व्यापारियों की व्यापारिक मण्डियां बन चुकी थी। इसके साथ ही उत्तरकाशी के हर्षिल में जांग्ला गढ़वाल तिब्बत का व्यापारिक केन्द्र बन चुका था। इसी प्रकार पिथौरामठ में जौलजीवी भी व्यापारिक मण्डी बन चुकी थी।

भारत-तिब्बत की सबसे बड़ी मण्डी उस समय बाड़ाहोती में थी। लेकिन 1962 में चीनी आक्रमण के बाद सीमावर्ती दर्रों से आवाजाही पर रोक के कारण इनका सदियों पुराना व्यापार ठप हो गया। यही नहीं इनमें से कुछ लोगों की सम्पतियां तिब्बत में ही रह गयीं। जिन लोगों की सम्पतियां तिब्बत में ही रह गयीं, उनमें बाला सिंह पाल और पूर्व मंत्री केदार सिंह फोनिया आदि के परिवार शामिल हैं। इस प्रतिबंध से पहले भोटिया विकट पहाड़ी और बर्फीले क्षेत्र को अपनी बकरियों के साथ पार कर तिब्बत पहुंचते थे।

बकरियों और याकों सिवा परिवहन का कोई दूसरा साधन सम्भव नहीं था। इसलिए बकरियां उनके जीवन का आवश्यक अंग थी। भोटिया और हुणियों (तिब्बती) व्यापारियों के बीच मित्रता या व्यापारिक सम्बन्ध पीढ़ी दर पीढ़ी चलते थे। यह मित्रता "सरछू-मलछू" भी कहलाती थी। इस प्रथा में दोनों समुदायों के व्यापारी एक दूसरे की जूठी शराब पीते थे। इस शराब में सर (सोना), छू (पानी), तमपाल (चांदी) मिलाया जाता था।

मित्रता को कष्ट से परे रखने के लिए साक्षी प्रमाण के तौर पर देव मूर्ति या धार्मिक पुस्तकें सिर पर रखी जाती थी। इसे - "कुंडाधार प्रथा"



कहते थे। इसके साथ मित्रता की प्रतिज्ञा ली जाती थी, जिसे –  
“डालीम–डाठीम” कहते थे। स्वेच्छा से मित्रता का यह बन्धन तोड़ा भी जाता था।

शीत ऋतु में वे जब ऊपरी इलाकों से निचली गर्म घाटियों में आते थे तो अपने साथ चोक, फरण, डोलू, जटामासी और गुनेर आदि जड़ी–बूटियां भी लाते थे, जो कि निचली घाटियों के गंगाडियों द्वारा खूब खरीदे जाते थे तथा बदले में अनाज प्राप्त करते थे। इसके साथ ही उन्होंने ऊनी वस्त्रों, कम्बल, थुलमें, दन एवं कालीन बनाने के परम्परागत शिल्प को आगे बढ़ाया तथा इन वस्तुओं के अच्छे दाम प्राप्त किए। इसके साथ ही उन्होंने अपने सर्दियों के गांवों के निकट दुकानें शुरू की। इनके मृद स्वभाव व ईमानदारी और परम्परागत व्यापारिक गुणों के कारण इनकी दुकानें फलती फूलती गईं और उनका विस्तार भी होता गया।

आज चमोली और पिथौरागढ़ जिलों के व्यापार में भोटिया अग्रणी हैं। नीचे स्थाई व्यापार से जाने के कारण कई भोटिया नीचे के कस्बों, गांवों और नगरों में ही ठहरने लगे और धीरे–धीरे नीचे की मरछ्वाड़ियों में समृद्धि स्थाई होने लगी। इसी के साथ उनमें शिक्षा का तेजी से प्रसार होने लगा। हल्द्वानी में जिस स्थान को आज भोटिया पड़ाव कहते हैं, वहां कभी भोटिया लोग मुनस्यारी और धारचूला जैसे स्थानों के व्यापार के लिए नीचे आकर अपना डेरा डालते थे। 16वीं शताब्दी में दुगतल मिर्जा ने “तारिक – ए – रसिदी” नामक पुस्तक में भोटिया और तिब्बतियों के बीच होने वाले व्यापार का वर्णन किया है। एटकिन्सन के अनुसार सन् 1877 से 1883 के बीच भारत से तिब्बत को 1,50,440 रुपये का औसत निर्यात और वहां से 3,32,374 रुपये का आयात हुआ। पिछले कुछ सालों से भारत सरकार द्वारा पिथौरागढ़ जिले के “गुंजी” में एक व्यापारिक चौकी स्थापित की गयी है। जहां पर तिब्बत के साथ व्यापार के लिए व्यापारियों को अनुमति दी जाती है। यह व्यापार हर साल 1 जून से 31 अक्टूबर के बीच निर्धारित है और विदेश मंत्रालय के पूर्वी एशिया सम्भाग द्वारा इन व्यापारियों को ट्रेड पास

दिए जाते हैं, लेकिन अब उत्तराखण्ड सरकार का व्यापार कर विभाग भी लाइसेंस जारी करने जा रहे हैं।

- **मौसमी गांव:**

कुछ अन्य जनजातियों की तरह भोटिया जनजाति एक जगह पर स्थिर नहीं रही, फिर भी इन्हें खानाबदोश नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि साल में इनकी बसागत कुछ निश्चित स्थानों पर ही होती थी। तिब्बत नजदीक होने के कारण नीति, माणा, चौदास, जौहार जैसी ऊंचाई वाली घाटियों में भीषण भौगोलिक परिस्थितियों के बावजूद भोटिया वहां रहते थे। वे क्षेत्र गर्मियों के लिए भोटियों की बकरियों के लिए भी अनुकूल क्षेत्र औश्र वहां व्यापारिक वस्तुओं का गोदाम बनाना और उसे वहां से तिब्बत ले जाने में अधिक सुविधा जनक और सुरक्षित था।

जौहारियों के अलावा शेष भोटिया समुदाय का साल में दो बार निवास परिवर्तन होता था। जबकि जोहार साल में तीन बार निवास बदलते रहे हैं। बाकी भोटिया जनजाति के लोग साल में दो बार जलवायु या मौसम के हिसाब से निवास बदलते हैं।

- **विकट जलवायु:**

जलवायु का भोटिया जनजाति के खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, जीवन शैली एवं व्यापार पर गहरा असर रहा है। प्राकृतिक पर्यावरण का उनकी शारीरिक बनावट पर भी असर रहा है। जिस क्षेत्र में भोटिया रहते हैं इसका एक चौथाई भाग साल में 6 महीने बर्फ से ढका रहता है। इस क्षेत्र में वर्षा बहुत कम होती है। यहां मई से अक्टूबर तक मानसूनी वर्षा बहुत कम होती है।

- **गांव का स्वरूप:**

भोटिया समुदाय के घर प्रायः दो या चार के हिसाब से पंक्तियों में होते हैं। गांव की संरचना काफी साधारण होती है। गांव में

प्रायः एक गली होती है तथा घरों को जाने के लिए बहुत तंग रास्ते होते हैं। यह इसलिए होते हैं ताकि घरों के अन्दर बर्फानी हवाओं का असर कम हो सके। इसके नीचे गर्म घाटियों में सर्दियों की बस्तियां भी ऊपर की जैसी ही होती है। तंग बस्तियों के आपस में सटे घरों के बावजूद में प्रायः आपसी मेल जोल तथा भाईचारे से रहते हैं।

### ● भोटिया भवन शैली:

भोटिया समुदाय के घर भी सांस्कृतिक धरोहर एवं सामाजिक एकता का प्रतिबिम्बन कहते हैं। इन भवनों को निर्माण शैली पर जलवायु का गहरा असर है। धूप एवं हवा के रूख को देख कर ही भवन निर्माण किया जाता है। यहां के न्यून तापमान का सीधा सम्बन्ध दीवारों की मोटाई, कमरों की ऊंचाई तथा छतों से है। दीवारें ठण्ड से सुरक्षा भी करती हैं तथा बर्फ से लदी छत का भार सहने में सक्षम होती है।

मिट्टी पत्थर की दीवारें प्रायः सभी जगह होती है। मगर उत्तरकाशी के जाड़ लकड़ी के घर भी बनाते हैं।

### ● पानी और भोटिया:

अधिकांश भाग बर्फ से ढका रहने तथा ऊबड़-खाबड़ पथरीली जमीन होने के कारण इनकी खेती नाम मात्र की ही रही है। फिर भी वे ओगल, फाफर, रामदाना जैसे कुछ गौण अनाज उगा ही लेते हैं। इसके लिए उन्हें छोटे नदी नाले आकर्षित करते थे, ताकि जरूरत पड़ने पर सिंचाई की जा सके। इन क्षेत्रों में पानी के जमीनी स्रोतों की बहुतायत होती है। इन स्रोतों का पानी अपेक्षाकृत गर्म होता है। पीने के पानी की जरूरत को देखते हुए बस्तियां प्रायः इन स्रोतों के पास बसाने की प्रवृत्ति रही है। बद्रीनाथ के गर्म पानी के स्रोत और नीति घाटी के तथा तपोवन का खौलते पानी का उगलता हुआ स्रोत विख्यात है।

### ● बस्तियां:

उत्तरकाशी से लेकर पिथौरागढ़ तक सोर सीमा तक क्षेत्र में भोटिया समुदाय की बस्तियां प्रायः छोटी तथा छितरी होती हैं क्योंकि ऊंचे पहाड़ी क्षेत्रों में प्रायः एक बड़े गांव लायक पर्याप्त धूप और तेज हवा से युक्त हवा नहीं मिलती। ऊंचाई वाले क्षेत्रों में भोटिया बसागत चोटियों के बजाय घाटियों में रहती हैं। खेती और धूप के लिए पहाड़ी के दक्षिणी ढलानों को बसागत के लिए चुना जाता था, क्योंकि धूप उनके लिए तथा खेती के लिए बहुत जरूरी है।

## ● चिपको आन्दोलन की जननी गौरा देवी:

चिपको आन्दोलन के जिक्र के बगैर जिस तरह दुनिया में पर्यावरण की चर्चा अधूरी है, उसी तरह अगर आप चिपको आन्दोलन का जिक्र बिना "रैणी गांव" और "गौरा देवी" कर रहे हैं तो समझ लीजिए कि वह चर्चा अधूरी नहीं बल्कि बेसिर-पैर की भी है। जी हां! "चिपको" और "गौरा देवी" वास्तव में एक दूसरे के पर्याय हैं, क्योंकि दुनियाभर में पर्यावरण और वन संरक्षण की अलख जगाने वाले इस आन्दोलन के प्रेरणा भले ही पद्मभूषण चण्डी प्रसाद भट्ट और उनके सर्वोदयी सहयोगी आलम सिंह बिष्ट आदि हो, मगर स्वयं पेड़ों पर चिपक कर इस पर्यावरण चेतना के महान संघर्ष "चिपको" की जननी और कोई नहीं बल्कि केवल गौरा देवी और उनकी दो दर्जन सहेलियां ही थीं। बेजुबान वृक्षों की इन रक्षक वीरांगनाओं ने हिमालय की उपत्यकाओं से वृक्षखोरों के खिलाफ जो गर्जना की वह दुनिया के कोने-कोने तक प्रतिध्वनित हुई। वह गौरा देवी भी कोई और नहीं बल्कि एक भोटिया महिला ही थी, जिसने सीमान्त नीति घाटी में स्थित रैणी गांव की अन्य भोटिया जनजाति की महिलाओं के सहयोग से 26 मार्च 1974 को कुल्हाड़ियों तथा बन्दूकों से लैस वन ठेकेदारों के मजदूरों, वन कर्मियों और ठेकेदारों के दबंगों को जंगल से इस तरह भगाया कि दोबारा पीछे मुड़कर नहीं देखा। इस आन्दोलन का सन्देश न केवल उत्तराखण्ड

और उत्तर-प्रदेश बल्कि भारत की सीमाओं को लांघकर सारी दुनिया में फैल गया। चिपको आन्दोलन का ही असर था कि सन् 1980 में भारत सरकार को वन संरक्षण अधिनियम बनाना पड़ा।

उस अधिनियम के आने के बाद समुद्र तल से 1000 मीटर से अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पेड़ों के कटान पर रोक लग गयी। उसी के बाद केन्द्र में वन मंत्रालय के साथ पर्यावरण मंत्रालय भी अस्तित्व में आया और आन्दोलन के दबाव में बनी समिति की सिफारिश पर उस क्षेत्र में वनों के कटान पर 20 साल के लिए रोक लग गयी।

दरअसल अंग्रेजों के जमाने से ही उत्तराखण्ड के वनों पर व्यापारिक निगाहें टिकी रहीं। आजादी से पहले विल्सन नाम का अंग्रेज और उसके बाद के बड़े ठेकेदार आज भी याद किये जाते हैं। वन कटान के व्यवसाय से जो भी जुड़ा उनकी पीढ़ियां आज भी मालोमाल और बड़े नाम वाली है। सत्तर के दशक में भारत-पाक युद्ध के बाद सन् 1973 से उत्तर-प्रदेश सरकार ने वनों की निलामी के जरिये राजस्व अर्जित करने का जो उपक्रम शुरू किया उसमें चिपको आंदोलन आड़े आ गया। एक दिन गांव के सारे पुरुषों को नदारद पा कर वन ठेकेदार की कुल्हाड़ियों से लैस सेना जोशीमठ ब्लॉक के सीमान्त क्षेत्र रैणी के जंगल पहुंच गयी। उस आंदोलन की एक जीवित सदस्य बाली देवी के अनुसार 26 मार्च 1974 की सुबह जब जंगल काटने के लिए मजदूर और वनकर्मी रैणी स्थित ऋषिगंगा के आस-पास देवदार के जंगलों को काटने पहुंचे तो उसी गांव की गौरा देवी, लीलामती, उमा देवी, गुमती देवी, गोमा देवी एवं स्वयं (बाली देवी) समेत 27 महिलाएं घटना स्थल पर पहुंची और उन्होंने मजदूरों से पेड़ न काटने की अपील की, लेकिन मजदूर और वन कर्मी उनकी अपील को महत्व देने के बजाये गाली-गलौच के साथ ही कुल्हाड़ियों से काट देने की धमकियां भी देने लगे। इस पर सबसे पहले गौरा देवी एक पेड़ से चिपकी तो बाकी महिलाएं भी पेड़ों से चिपक गयी और ठेकेदार के लोगों को ललकारने लगी कि अगर

उनमें हिम्मत है तो पहले उन्हें काटे और फिर पेड़ काट कर दिखा दें। उस समय वहां पर 60 मजदूर थे। इन महिलाओं का रौद्ररूप देख कर वन कर्मी और उनके साथ ही वन मजदूर भी वहां से खिसक गये।

वास्तव में चिपको आंदोलन की जननी गौरा देवी ने अनपढ़ होते हुए भी वनों को बचाने के लिए जो आर्दश पेश किया वह दुनिया के सामने एक मिसाल है। राजपाल बिष्ट ने गौरा देवी के बारे में लिखा कि सन् 1925 में जोशीमठ से 24 किमी० दूर नीति घाटी के लाता गांव के जनजातीय परिवार तोलछा में पैदा हुई गौरा देवी स्कूली शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकी, लेकिन उसके भीतर संघर्ष जीवित था। 12 साल की उम्र में उनका विवाह रैणी गांव के मेहरबान सिंह के साथ हुआ। 19 वर्ष की उम्र में उन्होंने बेटे चन्द्र सिंह को जन्म दिया और 22 साल की उम्र में पति का साया सिर से उठने पर विधवा हो गयी। 4 जुलाई 1991 को चिपको आंदोलन की इस माता का निधन हो गया, मगर उसकी प्रेरणा अमर हो गयी।

**भोटिया महिलाएं** हाथ में तकली, पीठ पर कपड़े से बंधा बच्चा और सामने एक डगर पहाड़ी पगडण्डी की या फिर पीठ पर बच्चा और लकड़ी के रांच पर कालीन बनाने के लिए रंग-बिरंगे धागों के ताने-बाने में उलझी भोटिया नारी सचमुच जिन्दगी के रंग-बिरंगे सपनों की एक प्रेरणा ही है। भोटिया महिला के बारे में कहा जाता है कि वह कभी खाली नहीं बैठती हैं।

पण्डित गोविन्द बल्लभ पंत ने 1935 में कहा था कि भोटिया समाज में और खासकर दारमा, व्यास और चौंदास इलाके में महिलाएं अपना विशेष स्थान रखती हैं। अधिकांश पुरुष गर्मियों में व्यापार के सिलसिले में तिब्बत जाते हैं और सर्दियों में वे निचली घाटियों के गांवों में चले जाते हैं। उनकी अनुपस्थिति में महिलाएं अपने घर की

देखभाल करती है। जिम्मेदारियों का यह अनुभव उन्हें आत्मनिर्भर तथा एक योग्य पत्नी बनाता है।

भोटिया महिलाएं गर्म कपड़े बुनती हैं। उनमें प्रोसेसिंग, डाइंग और ऊन बुनने की परंपरागत कला संस्कार के तौर पर मां से बेटी के पास जाती हैं। उनमें पुरुषों के साथ काम का बंटवारा भी समान नहीं है। वे अन्य पहाड़ी महिलाओं की तरह पुरुषों के बाद भोजन करने की प्रथा को नहीं मानती हैं, क्योंकि उसे भोजन के तुरन्त निपटा कर बुनाई जैसे कार्यों पर तत्काल जुटना होता है। वहां भोजन के स्तर में भी महिला-पुरुष में भेद नहीं है। ये महिलाएं कच्ची शराब बनाने में माहिर होती हैं।

गढ़वाल में उसे दारू और शौका समाज में "च्यक्ती" कहा जाता है। ये मेहमानों को निःसंकोच शराब परोसती हैं। गरीब महिलाएं शराब बेचती हैं। भोटिया समाज में कच्ची शराब न केवल जीवन और संस्कृति का बल्कि आर्थिकी का भी अभिन्न अंग है।

कठिन जलवायु के कारण भोटिया महिलाएं शारीरिक रूप से स्वस्थ और ताकतवर होती हैं। वे पर्दा प्रथा भी नहीं रखती हैं, क्योंकि उससे उनका कार्य प्रभावित होता है। उन्हें गंगाड़ियों के गांव में वस्तुविनिमय के लिए भी जाना पड़ता है। जहां उन्हें दीदी, भुली या मित्री शब्दों से सम्बोधित किया जाता है तथा पूरा स्नेह मिलता है। व्यापार के लिए गांव आने वाले भोटिया पुरुषों को "मितर" भी कहा जाता है। गांवों में उनसे दुर्व्यवहार की बात कभी नहीं सुनी गई। वैसे भी वे व्यवहार कुशल होती हैं और उत्पादन में या तो उनका एकाधिकार है या बराबर को सहयोग होता है।

- **चन्द्रप्रभा ऐतवाल:**

उत्तराखण्ड से लगभग एक दर्जन लोग अगर एवरेस्ट चढ़े हैं तो इसका श्रेय चन्द्रप्रभा ऐतवाल को भी जाता है। तीस से अधिक पर्वतारोही अभियानों की प्रमुख होने के नाते उन्होंने नेपाल,

तिब्बत, जापान, न्यूजीलैण्ड, कश्मीर, हिमालय प्रदेश और लद्दाख आदि में पर्वतारोहण किया। इसके लिए उन्हें 1981 में अर्जुन पुरस्कार, 1991 में पद्म श्री, 1994 में राष्ट्रीय साहसिक खेल पुरस्कार, 2004 में आई एम एफ लाइफ टाइम अचीवमेंट पुरस्कार और 2010 में तेंजिंग नोर्गे एडवेंचर लाइफ टाइम अचीवमेंट अवार्ड से अलंकृत किया गया।

चन्द्रप्रभा को अब भी मलाल है कि 1984 में अगर एवरेस्ट अभियान दल के उपनेता ने शिखर के बहुत करीब से उन्हें नीचे उतरने का आदेश न दिया होता तो वह पहली भारत की और दुनिया की पांचवी एवरेस्ट विजेता महिला होती। नव भारत टाइम्स के 4 जनवरी 2004 के अंक में छपी एक रिपोर्ट में सुश्री ऐतवाल ने दावा किया कि 9 मई 1984 को वह तथा उनके साथी "फू दोरजे" माउन्ट एवरेस्ट को फतह करने के अन्तिम चरण में 28 हजार फुट पर थे कि अचानक वॉकी-टॉकी पर डिप्टी टीम लीडर कर्नल प्रेम चन्द ने आदेश दिया कि वे दोनों तुरन्त माउन्ट एवरेस्ट पर चढ़ाई अभियान स्थगित कर दे। सुश्री चन्द्रप्रभा ने कहा कि यह आदेश अप्रत्याशित था, क्योंकि मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ थी तथा उस दिन मौसम भी साफ था लेकिन पर्वतारोहण में अभियान के लीडर का आदेश सर्वोपरि होता है। यह आदेश नहीं मिला होता तो इस पर्वत पर चढ़ने वाली प्रथम भारतीय महिला होने का गौरव उनके खाते में होता।

सीमान्त भोटिया ने सांस्कृतिक एवं व्यापारिक क्षेत्र में ही नहीं, अपितु बौद्धिक, राजनैतिक और सामाजिक सेवा के क्षेत्र में भी आगे बढ़ कर उदाहरण पेश किए हैं। गौरा देवी, बछेन्द्री पाल और चन्द्रप्रभा ऐतवाल की ही तरह पिथौरागढ़ की जखुली देवी ने समाज सेवो के क्षेत्र में अपना नाम अमर किया है। जसुली देवी ने अपनी पूरी सम्पति अंग्रेज गर्वनर सर रैम्जे को पैदल यात्रियों की सुविधा हेतु धर्मशालायें निर्मित हेतु समर्पित की थी। उन्होंने लगभग 300 धर्मशालायें बनवाईं जिनके अवशेष आज भी पूरे कुमाऊँ में पाये जाते हैं।



- **एवरेस्ट विजेता: बछेन्द्री पाल:**

भोटिया महिलाओं में वो कूवत है कि इतिहास उनके पीछे चलता है। दरअसल में वो महिलाएं हैं, जिन्होंने अपनी मेहनत, दिलेरी और लगन से साबित कर दिखाया है कि महिलाएं चाहे किसी भी जाति की क्यों न हो वे पुरुषों से कम नहीं बल्कि एक कदम आगे भी हो सकती हैं। गगन चुम्भी शिखरों का गर्वमर्दन करने वाली बछेन्द्री पाल और चन्द्र प्रभा ऐतवाल वे दो भोटिया नारियां हैं जिन्होंने अपनी हिम्मत और हौसले का डंका सारी दुनिया में अपनी हिम्मत और हौसले का डंका सारी दुनिया में बजाया है। इनमें उत्तरकाशी जिले के नाकुरी गांव में 24 मई 1954 में जन्मी बछेन्द्री पाल 23 मई 1984 को दुनिया की सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट पर चढ़कर भारत की पहली और दुनिया की पांचवी महिला एवरेस्ट विजेता होने का गौरव हासिल हुआ।

एम0 ए0, बी0 एड0 की (शिक्षा) शैक्षिक योग्यता के बाद भी अच्छी नौकरी न मिलने पर बछेन्द्री पाल ने नौकरी करने के बजाय नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ माउन्टनियरिंग (एनआइएम) से जीवन की नई राह तलाशी और 1982 में एडवांस कैम्प के तौर पर उन्होंने गंगोत्री (6,672मीटर) और रदुगौरा (5,819मीटर) की चढ़ाई को पूरा किया। इस कैम्प में बछेन्द्री पाल को ब्रिगेडियर ज्ञान सिंह ने बतौर इंस्ट्रक्टर पहली नौकरी दी। सन् 1984 में भारत का चौथा एवरेस्ट अभियान शुरू किया। दुनिया में तब तक केवल 4 महिलाएं एवरेस्ट पर चढ़ पायी थी।

1984 के इस अभियान में जो टीम बनी, उसमें बछेन्द्री पाल और चन्द्र प्रभा ऐतवाल समेत 7 महिलाएं और 11 पुरुषों को शामिल किया गया था। 23 मई 1984 के दिन ठीक 1 बजे बछेन्द्री पाल ने 29,028 फुट (8,848मीटर) की ऊँची सागर माथा (एवरेस्ट) की चोटी पर तिरंगा फहराने का गौरव हासिल किया। इसके साथ एवरेस्ट पर सफलतापूर्वक कदम

रखने वाली वह दुनिया की 5वीं और भारत की पहली महिला बनी। केन्द्र सरकार ने उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया।

सन् 1994 में बछेन्द्री पाल ने महिलाओं के गंगा नदी में हरिद्वार से कोलकाता तक 2500 किमी० लम्बे नौका अभियान का नेतृत्व किया। हिमालय के गलियारे में भूटान, नेपाल, लेह और सियाचिन ग्लेशियर से होते हुए काराकोरम पर्वत श्रृंखला पर समाप्त होने वाला 4000 किमी० लंबा अभियान उनके द्वारा इस दुर्गम क्षेत्र में प्रथम महिला अभियान का प्रयास था। बछेन्द्री पाल की प्रेरणा से उनके छोटे भाई राजेन्द्र सिंह पाल ने भी 26 मई 2012 को एवरेस्ट की चोटी पर झण्डा फहराकर एक बार फिर देश और उत्तराखण्ड का नाम रोशन किया।

### ● भोटिया— धर्म एवं संस्कार:

भूटान और नेपाल से लेकर हिमाचल प्रदेश तक विभिन्न समूहों में फैले भोटिया जनजाति के लोग मुख्यतः हिन्दू और बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। सन् 1971 की जनगणना में कुछ भोटिया मुस्लिम और अन्य धर्मों को मानने वाले थे। लेकिन 1981 की गणना में 99 प्रतिशत से अधिक भोटिया बौद्ध और हिन्दू ही पाये गये। सन् 1981 की जनगणना में सिक्किम के 98.21 प्रतिशत भोटिया हैं, जबकि उत्तराखण्ड में केवल जाड़ बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं।

हिन्दू देवी देवताओं के अलावा ये अपने देवता गाब्ला, स्यांगसाइ, भुसाइ, लमसाल और घण्टाकर्ण की पूजा करते हैं। इनके धार्मिक गुरु या पुजारी पसुव धामी, धन्गरिया और ब्राह्मण होते हैं।

हिन्दू त्यौहारों के अलावा से लोसर, स्यांगयांग, गबला और नन्दाष्टमी पर्व मनाते हैं। भोटिया समूह विवाहोत्सवों को बड़े हर्षोल्लास से मनाते हैं। विवाहोत्सव का जश्न शराब के बिना अधूरा माना जाता है। चमोली के भोटिया जनजाति का पौंणा नृत्य (बारात का नृत्य) इतना लोकप्रिय होता जा रहा है कि उसका आयोजन गैर भोटिया कार्यक्रमों में भी होने लगा। के० एस० सिंह के अध्ययन में कहा गया है कि जाड़, दारमी,

ब्यासी और चौंदासी में ममेरे, फुफेरों में भी वैवाहिक सम्बन्ध हो सकते हैं, जबकि इनमें देवर और साली में विवाह की अनुमति है, लेकिन अब भोटिया लोगों के गंगाड़ी ठाकुरों से रिश्ते होने लगे हैं। इनमें सामान्यतः माता-पिता द्वारा ही विवार तय होते हैं। कुछ उप समूहों में कन्या शुल्क लेने की प्रथा रही है। जबकि मारछा, तोलछा और जोहारी में यह प्रथा कभी नहीं रही है।

सिक्किम के भोटिया अपने मुर्दों को लेकर 49 दिन तक घर के अन्दर ही रख लेते हैं और शोक मनाते हैं और उसके बाद मुर्दे का अंतिम संस्कार किया जाता है। बरसी के अवसर पर लामचे संस्कार होता है।

### ● हिन्दू रीति से बौद्ध त्यौहार लोसर:

उत्तराखण्ड की जनजातीय विविधता में भोटिया जनजाति में जितनी सांस्कृतिक विविधता मिलती है, उतनी किसी अन्य जनजाति में नहीं मिलती है। पिथौरागढ़ के भोटिया जहां शौका और फिर ब्यासी, जोहारी और दारमी या रं कहलाते हैं। वहीं गढ़वाल के भोटिया मारछा, तोलछा और जाड़ जातियों के नाम से जाने जाते हैं। ये न केवल स्वयं को क्षत्रिय मानते हैं बल्कि इनके नाम भी अन्य क्षत्रिय जातियों की तरह होते हैं। गढ़वाल के मारछा, तोलछा और जाड़ ने गंगाड़ी क्षत्रिय रावत, राणा, नेगी, कुंवर और चौहान जैसी उपजातियां अपनायी हुई हैं। इसके बावजूद भी नेलंग-जादुंग के मूल निवासी जाड़ भोटिया अब भी बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं और बौद्ध धर्म होने के नाते उनके रीति-रिवाज तिब्बतियों के जैसे हैं, लेकिन कुछ हिन्दुओं की तरह पूजा भी करते हैं। डुण्डा के बीरपुर में रहने वाले जाड़ लोग आम गढ़वाली राजदूत की तरह रावत, नेगी और बिष्ट नामों से पुकारे जाते हैं। फिर भी वे बौद्ध परम्परानुसार तिब्बतियों या बौद्ध पंचांग का पालन भी करते हैं। उसी हिसाब से ही वे तिब्बती पंचांग के अनुसार लोसर पर्व पर नया साल मनाते हैं।

बौद्ध पंचांग के अनुसार मास शुक्ल के पक्ष की प्रथम तिथि से नये साल के पर्व पर मनाये जाने वाले लोसर के 15 दिन पहले से ही लोग

इस त्यौहार की तैयारियों में जुट जाते हैं। घरों की साफ सफाई या रंग-रोगन के साथ जाड़ लोग हरियाली डाल देते हैं। जबकि हरियाली नवरात्रि में डालना हिन्दुओं की परम्परा है।

नववर्ष की पूर्व संध्या पर अमावस्या की रात को वे दीवाली के रूप में मनाते हैं। इस रात स्त्री-पुरुष तीन रास्तों के मिलने के स्थान पर सभी के दुःख, रोग एवं अशान्ति को नष्ट करने के प्रतीक के रूप में चीड़ के छिलके (मशाले) जलाते हैं। उस स्थान पर संगीत एवं नृत्य के बाद वे लोग उस स्थान पर से पत्थर लेकर आते हैं, जिन्हें एक दूसरे को शगुन के तौर पर देकर एक-दूसरे की सम्पन्नता की कामना करते हैं। लोसर के पहले दिन गांव की ब्याही बेटियां एवं अन्य रिश्तेदार आमंत्रित किये जाते हैं।

त्यौहार के अन्तिम दिन जाड़ लोग लोसर को होली की तरह मनाते हैं। इस अवसर पर आटे से होली खेली जाती है, जो कि धनधान्य होने की कामना के लिए होती है। लोसर के अन्तिम दिन सभी लोग अपने घरों पर लगे पुराने झण्डे उतारकर उनकी जगह नए झण्डे लगा देते हैं। इस तरह वे अपने घरों में नए झण्डे फहरा कर बौद्ध पंचांग के अनुसार नए साल का स्वागत करते हैं।

इन झण्डों पर लम्बी उम्र और सम्पन्नता के लिए मंगल कामनायें करते हैं। इस अवसर पर गांव की ईष्ट देवी रिंगोली की टोली को गांव के चौक में लाकर उसकी पूजा-अर्चना की जाती है। इस अवसर पर (त्यौहार) प्रशासन से तीन दिन के लिए देवभोग छंग (कच्ची शराब की तरह नशीला पदार्थ) बनाने और पिलाने की अनुमति ली जाती है।

तिब्बत की सीमा से लगे जादूंग, नेलांग से विस्थापित कर डुण्डा में बसाए गए और पहले से ही बगोरी में रह रहे जनजाति समुदाय के लोग डुण्डा के बीरपुर में स्थायी रूप से बस गये हैं।

टनकपुर शहर से लगे बालखेड़ा ग्राम सभा के भोटिया पड़ाव क्षेत्र में बसे भोटिया, जनजाति के लोग भी महाशिवरात्रि से पूर्व अमावस्या से हर पांच दिनी लोसर पूर्व धूमधाम से मनाते हैं।

## ● बारह वर्षों में मनाया जाने वाला कण्डाली पर्व:

कण्डाली पर्व एक

तरह से रं भोटिया समुदाय के लिए महाकुम्भ जैसा ही है, जो पूरे 12 वर्ष बाद मनाया जाता है और इस अवसर पर देश-विदेश में फैले इस समुदाय के लोग अपने गांवों में लौट आते हैं। इस अवसर पर पिथौरागढ़ जिले के सीमान्त चौदास क्षेत्र में हर बारह वर्षों बाद बुराई का प्रतीक मानी जाने वाली कण्डाली पौधे का रं समुदाय द्वारा नष्ट किया जाता है। इस पौधे पर 12 वर्ष में एक बार फूल खिलते हैं। इसी के साथ आने वाले बारह वर्षों के लिए क्षेत्र को सम्भावित सभी संकटों से मुक्त माना जाता है।

इस क्षेत्र में मनाये जाने वाले प्रमुख त्यौहारों में स्यांड ठांड है, जो प्रतिवर्ष मनाया जाता है। इस त्यौहार में स्यंडसै (शिव), गषला (गणेश) के अलावा ईष्ट, ग्राम देवताओं सहित पूर्वजों का आह्वान और पूजा अर्चना की जाती थी। चार दिनों तक उपासना चिलमन से शुरू होती है। चिलमन का मतलब तन मन को पवित्र बनाना है। चौथे दिन सभा होती है, जो एक संस्कार महोत्सव है।

उच्च मध्य हिमालयी भू-भाग में पायी जाने वाली कण्डाली वनस्पति एक पुष्पीय पौधा है। इस पौधे पर प्रतिवर्ष एक फूल खिलता है। बारवें वर्ष में बारह फूल खिल जाते हैं। इसी के साथ इसे क्षेत्र के लिए अभिशाप मानते हैं और सामूहिक रूप से नष्ट किया जाता है। लोक मान्यता के अनुसार अतीत में इस क्षेत्र में रहने वाली महिला का 12 वर्षीय इकलौता पुत्र बीमार पड़ गया था। जिसका उपचार स्थानीय जड़ी-बूटी से करने पर वह स्वस्थ होने लगा। इसी क्रम में जब कण्डाली के पौधे को भी औषधि के रूप में दिया गया तो लड़के की मौत हो गयी। जिससे खिन्न होकर महिला ने अपने घर के पास उगे कण्डाली के सभी पौधों को नष्ट कर दिया कि जिस प्रकार बारवें वर्ष में उसका पुत्र छिन गया है, लेकिन कुछ लोग कहते हैं यहां के पुरुषों की अनुपस्थिति में जब तिब्बत की ओर

से जोरावर सिंह आया था (सेना के साथ) इस क्षेत्र में हमला किया तो उसके सैनिक इसी कण्डाली की झाड़ी के पीछे छिपे थे। वहां की महिलाओं को नष्ट करने के साथ ही उन सैनिकों को भी मार भगा दिया। पर्यावरणवादी इस त्यौहार के विरोधी हैं।

- **निष्कर्ष:**

भारत और तिब्बत के बीच का सीमान्त क्षेत्र अत्यन्त दुर्गम और हिमाच्छादित पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण भारत सरकार ने सामरिक कारणों से ही भोटिया को जनजाति का दर्जा दिया था, ताकि लोग अपने स्थानों पर बने रह कर अपना विकास कर सकें और सामरिक दृष्टि से अति संवेदनशील इस इलाके को निर्जन होने न दें। ये लोग एक तरह से सीमान्त प्रहरी ही हैं। लेकिन 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद तिब्बत के लिये व्यापार बन्द हो जाने के कारण लोगों को इन दुर्गम एवं जीवन के लिये अति कठिन क्षेत्र में निवास करना निरर्थक हो गया। उस स्थिति में सरकार ने भी नहीं सोचा कि बिना आजीविका के कोई भी आबादी ऐसे विकट भौगोलिक परिस्थिति वाले और शेष दुनिया से कटे दुर्गम क्षेत्र में कैसे टिक सकेगी? हालांकि इन कर्मवीरों ने उस हालत में भी जीने को काफी कुछ साजों-सामान तो जुटा लिया, मगर सम्पन्न होते जाते लोगों के लिये उन शीत मरुस्थलीय गांवों में टिकने की मजबूरी भी जाती रही। इस सीमान्त क्षेत्र से बहुत तेजी से जनसंख्या का पलायन होने के कारण राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये पुनः खतरा उत्पन्न हो गया है। चीन द्वारा इस क्षेत्र से सीमा का उल्लंघन करने की खबरें आम हो गयी हैं। हालात की नजाकत को देखते हुए अब जौनसार बाबर की तरह क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने की मांग उठने लगी है। यह भी विचारणीय है कि अगर भोटिया आबादी का सीमावर्ती क्षेत्र से पलायन रोकना है तो पिथौरागढ़ के साथ ही चमोली जिले और उत्तरकाशी से भी चीन के साथ व्यापार मार्ग खोलना होगा और इन सीमान्तकों के जीवन को प्रकृति की विकट परिस्थितियों में भी मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध करा कर आसान बनाना

होगा। उनके बच्चों के लिये आधुनिक शिक्षा और आम आदमी के लिये बेहतर इलाज की व्यवस्था वहीं करनी होगी। इसके लिये सेना या आईटीबीपी की मदद ली जा सकती है। यही नहीं उनके लिये लाभकारी व्यापार की सारी परिस्थितियां पैदा करनी होंगी। सवाल उठ रहा है जब चीन राखियां और दीपावली की फुलझड़ियां लेकर भारत के बाजार में छा रहा है, तो भारत भी इन भोटिया व्यापारियों के माध्यम से चीनी बाजार पर अपनी पकड़ मजबूत क्यों नहीं कर सकता ?

चीनी आक्रमण के बाद तिब्बत से व्यापार बन्द होने से उनके पुश्तैनी व्यापार पर तो असर पड़ा ही है साथ ही उत्तराखण्ड के लोगों को सस्ती ऊन तथा सस्ते सुलभ ऊनी वस्त्रों से भी वंचित होना पड़ा है। पहाड़ों के लिए चट्टानी नमक की आपूर्ति भी बन्द हुई है। तिब्बत से व्यापार बन्द होने के कारण भोटियों की लाखों बकरियां उन पर बोझ बन गईं। इसलिए बकरियों की संख्या लाखों से हजारों तक सिमट गई और यह संख्या लगातार घटती जा रही है। इसका सीधा असर उत्तराखण्ड के ऊन उत्पादन पर पड़ा और मांग तथा आपूर्ति में भारी अन्तर होने से ठन्डे पहाड़ों के लिए अति आवश्यक ऊनी कपड़े आम आदमी की पहुंच से बाहर हो गए। उनकी जगह सिन्थेटिक धागों के वस्त्रों ने ले ली जो कि पर्यावरण की दृष्टि से खतरनाक होने के साथ ही स्वास्थ्य के लिए भी अनुपसुक्त बताए जाते हैं।

तिब्बत का व्यापार बन्द होने तथा बकरियों की संख्या बहुत कम हो जाने के कारण भोटिया लोगों ने आजीविका के लिए नये विकल्प ढूँढ लिये। इससे उनके जीवन में कुछ स्थायित्व तो आया, परन्तु आत्मनिर्भर समाज पराश्रित हो गया। इसके साथ ही गलीचे, दन, थुलमें, कम्बल, ऊनी वस्त्र बनाने की उनकी परम्परागत हस्तशिल्प कला के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न हो गया। वन एवं वन्य जीव संरक्षण के नाम पर फूलों की घाटी और नन्दादेवी बायोस्फीयर जैसे कई बुग्याली क्षेत्रों को आरक्षित किए जाने के बाद भोटिया कई बुग्याली क्षेत्रों को आरक्षित किए जाने के बाद भोटिया कई बुग्याली चारागाहों से वंचित हो गए, जिस

कारण उनके ऊन उत्पादन, हस्तशिल्प और प्राचीन कुटीर उद्योग पर पड़ा है। जबकि भोटिया का कुटीर उद्योग अन्य पहाड़ियों के लिए अनुकरणीय उदाहरण था। भोटिया जनजाति के लोग कच्ची शराब बनाने के माहिर होते हैं। शराब इनके जीवन से अलग नहीं की जा सकती है, क्योंकि रीति रिवाज से भी जुड़ी हुई है। जबकि आबकारी एक्ट के तहत कच्ची शराब बनाना जुर्म है। इस समाज पर किसी भी तरह आबकारी एक्ट का डण्डा चलाना न्यायपूर्ण नहीं है। संविधान की अनुसूची 6 के तहत उत्तर पूर्व के जनजाति क्षेत्रों में शराब बनाने और उपभोग की खुली छूट है। अनुसूची 6 में प्रावधान है कि वहां पर एल्कोहल उपभोग को प्रतिबन्धित करने के लिये कानून ही नहीं बनाये जा सकते। इसी प्रकार उत्तराखण्ड की 4 जनजातियों में शराब धर्म से जुड़ी हुई है और लोक जीवन से शराब को अलग करना व्यावहारिक भी नहीं है। इसलिये उत्तराखण्ड के जनजातीय क्षेत्रों से मद्य निषेध या आबकारी कानूनों का कोई मतलब नहीं है। लोसर के अवसर पर उत्तरकाशी में रहने वाले जाड़ भोटिया समुदाय के लोगों को नशीली छंग बनाने की अनुमति प्रशासन द्वारा दी जाती है। इस अवसर पर लोग जमकर छंग का आदान-प्रदान और सेवन करते हैं। संसद द्वारा पारित वनवासी वनाधिकार कानून 2006 का लाभ तो उत्तराखण्ड की जनजातियों को अब तक मिला नहीं मगर फूलों की घाटी नेशनल पार्क और नन्दा देवी बायोस्फीयर रिजर्व जैसे संरक्षित क्षेत्रों ने उनके जीवन की मुश्किलातों को अवश्य बढ़ा दिया है। मजबूरन लाता गांव के लोगों को ढोल-दमाऊ और मवेशियों के साथ बायोस्फीयर रिजर्व में प्रतीकात्मक प्रवेश करना पड़ा।